लेखक परिचय

डॉ. हरिओम

जीन्द (हरियाणा) के ग्रामीण आंचल में 10 जनवरी 1959 को जन्में तथा कृषक परिवार की पृष्ठभूमि में आरम्भिक शिक्षा के बाद पी. एच.डी. (सस्य विज्ञान) की डिग्री चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार से प्राप्त की। डिग्री हेतू किए गए संकर धान पर उत्तम शोध कार्य के लिए डॉ. वी.डी. कश्यप स्वर्ण पदक से सम्मानित।

हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय के सस्य विज्ञान विभाग में वरिष्ठ वैज्ञानिक के पद पर कार्यरत्त हैं। पिछले 24 वर्षों से मुख्य रूप से धान-गेहूं फसल चक्र, फसल प्रणाली व कृषि प्रणाली के उत्पादन सम्बन्धी शोध कार्य में संलग्न हैं। साथ ही देश एवं विदेश की विभिन्न प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में 150 से अधिक शोध पत्रों/लेखों और 6 पुस्तकों/बुलेटिन के लेखन में योगदान किया है। अन्तर्राष्ट्रीय सेमीनार 'नेचुरल रिसोर्स मैनेजमेंट' में श्रेष्ठ शोध पत्र प्रस्तुति हेतू सम्मानित।

आध्यात्मिक पुनर्जन्म के लिए 14 नवम्बर 1986 को राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज के चरण कमलों में पहुंचे और दीक्षा ग्रहण की। सतगुरू की आज्ञा से 1 फरवरी 1998 से आध्यात्मिक कार्य के मिशन में संलग्न हैं। अध्यात्म को वैज्ञानिक आधार पर प्रस्तुत किया और 18 आध्यात्मिक पुस्तकों की रचना की।

बच्चों पर सत्संग का प्रभाव

राधास्वामी सत्संग ताराधाम, कुरूक्षेत्र
(हरियाणा)

बच्चों पर सत्संग का प्रभाव

सर्वाधिकार सुरक्षित
जून 2007

डा० हरिओम
वरिष्ठ वैज्ञानिक

राधास्वामी सत्संग ताराधाम, कुरूक्षेत्र
(हरियाणा)

विषय - वस्तु

क्रम सं.	विषय	पष्ठ सं.
1.	आध्यात्मिक संकल्प, मार्ग एवं लक्ष्य	1
2.	बच्चों पर सत्संग का प्रभाव	5
3.	जिज्ञासुओं के लिए प्रश्न	43
4.	पुस्तक सूची	44

राधास्वामी।

राधास्वामी दयाल की दया राधास्वामी सहाय।

राधास्वामी।

समर्पित

राधास्वामी दयाल परम् संत

सतगुरू ताराचन्द जी महाराज

के चरण कमलों में।

आध्यात्मिक संकल्प, मार्ग एवं लक्ष्य

राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज की प्रेरणा से हमने संकल्प लिया है कि आध्यात्मिक कार्यों के लिए किसी से भी पैसों की सेवा नहीं ली जाएगी और किसी आश्रम की स्थापना नहीं की जाएगी क्योंकि मेरा विश्वास है कि यदि कोई आध्यात्मिक सूर्य उदय होना चाहता है तो वह इतना सक्षम है कि वह अपना रास्ता स्वयं ही बनाएगा, यह उसकी आवश्यकता है और मजबूरी भी। यदि वह स्वयं की अभिव्यक्ति के लिए किसी धन और आश्रमों का मोहताज है तो मुझे ऐसा अध्यात्म स्वीकार नहीं है।

व्यक्ति का धन दीनहीन की सेवा के लिए हो, गुरू की विलासिता के लिए नहीं। आज के अध्यात्म का मार्ग यदि झोंपड़ी की तरफ नहीं जाता है तो वह गुरूओं के आलीशान महलों की तरफ तो कतई नहीं जा सकता है। सर्वभूतों, दीन-दुःखियों और अपने चारों तरफ के वातावरण में ही सतगुरू के दर्शन हों। मनुष्य का हृदय ही आश्रम हो जो हर जीव-अजीव को शांति दे और उसके लिए सुख और परोपकार की कामना करे। व्यक्ति का घर ही आश्रम हो जहां पर माता-पिता और आगन्तुक परमात्मा तुल्य हों। शान्ति, विकास और सुरक्षा का आधार कम्यून, संघ या कोई गठजोड़ नहीं बल्कि स्वयं व्यक्ति हो जो समाज व वातावरण की जरूरत को समझे। व्यक्ति के विकास से समाज और देश के विकास का मार्ग स्वयं ही निर्मित होगा। यही आध्यात्मिक साम्यवाद है जो व्यक्ति एवं घर से आरम्भ होता है और विश्वमानव या महामानव के निर्माण पर इसकी पूर्ति होती है।

अध्यात्म का कार्य करने के लिए और उसमें जीने के लिए हमें किसी मन्दिर, मस्जिद, चर्च या गुरूद्वारे की आवश्यकता नहीं है। इस कार्य के लिए केवल एक ही इन्फरा-स्ट्रक्चर या व्यवस्था चाहिए और वह है मनुष्य रूपी शिवालय, मनुष्य रूपी देवालय। मिट्टी के एक तत्व से बने तीर्थ स्थान, मूर्ति या शास्त्र इसकी आवश्यकता नहीं हैं बल्कि परमात्मा के जीवन से भरपूर पंचतत्व से निर्मित मनुष्य का शरीर चाहिए जिसके अन्दर

स्वयं सष्टि का स्वामी निवास करता है। मनुष्य के मन और हृदय में सारे देवी-देवता, सारे तीर्थ व शास्त्र समाए रहते हैं और यहीं से इन सभी की पैदायश है।

बुल्लेशाह कहते हैं-

मन्दिर ढ़ाहदे मस्जिद ढ़ाहदे, ढ़ाहदे जो कुछ ढ़हंदा ए।
पर दिल किसी दा न ढ़ाहवी रब दिलां विच रहंदा ए।।

मेरा ऐसा मानना है कि यदि मनुष्य के अन्दर आध्यात्मिक सूर्य अर्थात् विज्ञानमय या आनन्दमय पुरूष की एक किरण भी संचित हो जाती है तो वहां पर हर तरह की बरकत स्वतः ही बहने लगती है। वह धरती सबको अपनी तरफ खींचने लगती है। सामाजिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक व आर्थिक चेतना का विकास होने लगता है। किसी समाज में यदि एक भी व्यक्ति ऐसी अवस्था को प्राप्त कर लेता है तो वह समाज ही नहीं बल्कि देश भी उन्नति के शिखर पर पहुंचता है। ऐसे समाज या देश को हानि पहुंचाना किसी के लिए भी सम्भव नहीं है। उत्थल-पुत्थल अवश्य आती हैं लेकिन हर उत्थल-पुत्थल जीवन की नई-२ सम्भावनाओं व चुनौतियों को जन्म देती है। कर्मयोगी समाज के लिए यही सम्भावनाएं और चुनौतियां वरदान बनती हैं और सुनहरे भविष्य का निर्माण करती हैं।

मनुष्य के लिए शारीरिक या मानसिक धर्म अलग-२ हो सकते हैं लेकिन आत्मा या रूह का केवल एक ही धर्म हो सकता है और वह है प्रेम। सच्चा प्रेम मनुष्य को जोड़ता है तोड़ता नहीं। प्रेम अनहद है जो हर हद को पार करने का सामर्थ्य रखता है। प्रेम की कोई जात नहीं है, प्रेम किसी धर्म या सम्प्रदाय का मोहताज नहीं है। वह यह नहीं पूछता कि सामने वाला व्यक्ति हिन्दू है या मुसलमान, सिख है या ईसाई, ब्राह्मण है या शुद्र। वह तो केवल देना जानता है, लेना उसकी फितरत ही नहीं है। अतः इस भौतिक संसार में प्रेम ही धर्म है, प्रेम ही मार्ग और प्रेम ही मंजिल है। इस मार्ग में किसी अवतार, पैगम्बर या मसीहा की बाहरी पूजा के लिए कोई स्थान नहीं है लेकिन इनके आदर्शों का अनुसरण करके हमें इन्हें अपने ही अन्दर जीवित करना होगा। इनकी दैविक चेतना का अनुभव हमें अपनी ही आत्मा के अन्दर करना होगा तभी विश्व गांव का सपना साकार

हो सकेगा और धरती पर स्वर्ग बनाने की इच्छा की प्राप्ति हो सकेगी। वरना धर्म और समाज की ये दीवारें मनुष्य को हमेशा आपस में बांटती ही रहेंगी।

प्रेम सार्वभौमिक धर्म है, जिसे मनुष्य के साथ-२ पशु और पौधा भी मानता है। जीव-अजीव की यह सारी सष्टि इसी प्रेम के खिंचाव की शक्ति के कारण ही भिन्न-२ अस्तित्वों में बंटी हुई है और हर एक अस्तित्व अपनी पूर्ति के लिए दूसरे अस्तित्व के चारों ओर चक्कर काट रहा है। पौधा, पशु, पक्षी, जीव-अजीव हमारे किसी धर्म या शास्त्र को नहीं जानते, वे तो बस प्रेम की भाषा को पहचानते हैं। अतः प्रेम का धर्म (धर्मे-सीना) ही व्यावहारिक धर्म है जो मनुष्य को शाश्वत धर्म या धर्मे-हकीकत से वाकिफ करवाता है। इसलिए मानव कल्याण के इस यज्ञ में हमें किसी धन या द्रव्य की आवश्यकता नहीं है बल्कि प्रेम व पवित्र विचार की आहुति चाहिए और उसी के प्रति संकल्प की आवश्यकता है।

माता-पिता और परिवार से मिली आध्यात्मिक पष्ठभूमि ने हमेशा मेरा मार्गदर्शन किया है और जीवन में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया है। आध्यात्मिक मिशन का यह कार्य मेरी पत्नी और आध्यात्मिक सहयोगी श्रीमती बिमल की प्रेरणा से आरम्भ हुआ। मेरे सतगुरू राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज ने इस प्रेरणादायक चिंगारी को अपनी तवज्जह और दया के हाथ से ध्यान-भजन की हवा देकर ब्रह्म अग्नि में परिवर्तित किया जो हर समय योगयज्ञ की ज्योति (नूर) बनकर अन्दर जलती रहती है और अनहद नाद बनकर खुदाई कलमा (वर्ड) सुनाती रहती है। सम्भवतः इसी आध्यात्मिक चिंगारी को आंखों में देखकर मेरे सतगुरू शहनशाह ने मेरा नामकरण किया और मुझे 'प्रकाश' के नाम से पुकारने लगे। तब से वे हम दोनों को बिमलप्रकाश कहकर पुकारते थे। आज सत्संग का यह कार्य सतगुरू-मुर्शिद की दया और मेहर से ही आगे बढ़ रहा है और इसमें बिमल का विशेष योगदान है। आध्यात्मिक दष्टि से देखा जाए तो बिमल का ध्यान हमेशा ही सारी संगत में अव्वल रहा जिसकी चर्चा मेरे सतगुरू समय-समय पर संगत के बीच में करते रहते

थे।

यह मैं उन लोगों के लिए लिख रहा हूं जो स्त्री को तुच्छ व भोग की वस्तु समझते हैं और कहते हैं कि औरत आध्यात्मिक ऊँचाई को नहीं छू सकती है। मेरे सतगुरू कहते थे कि परमात्मा ने दो ही जातियां बनाई हैं, एक स्त्री व दूसरी पुरूष। यही दो जातियां पुरूष और प्रकति बनकर सष्टि का सजन करती हैं। जब स्त्री और पुरूष स्वयं का आधा अस्तित्व एक-दूसरे को समर्पित कर देते हैं तो ये अर्धनारीश्वर बनकर एक दूसरे का अंग-प्रत्यंग होकर कार्य करते हैं और एकता के सूत्र में बंध जाते हैं। प्रकति जब अपना पूर्ण समर्पण कर देती है तो यह परामाया या पराप्रकति या राधा बनकर पुरूष (स्वामी) के अन्दर समा जाती है और पुरूष पराप्रकति या पराशक्ति बनकर अपने परम् शुद्ध रूप में स्थित हो जाता है जहां पर लिंग-भेद, जाति-पाति और धर्म-सम्प्रदाय सभी गुण व आकार अस्तित्वहीन हो जाते हैं। ऐसे ब्रह्मरूप या सतगुरू रूप का अनुभव जो भी व्यक्ति करता है वही ब्राह्मण कहलाता है। कुण्डलीनी शक्ति के सुदर्शन चक्र और आध्यात्मिक सूर्य व चन्द्रमा के दर्शन स्वयं के अन्दर करता है वही सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी कहलाता है। ऐसे आत्मिक स्रोत के आगे सारी भौतिक सत्ता की ऐश्वर्यता नतमस्तक हो जाती है और ऐसे स्रोत का मार्ग यदि किसी सांसारिक विलासिता का मोहताज है तो यह एक विडम्बना है। मैं यह नहीं कहता कि मुझे यह सब प्राप्त हो गया है बल्कि इस आध्यात्मिक लक्ष्य के प्रति मैं प्रयासरत हूं ताकि पूरी मानवता इस लक्ष्य की प्राप्ति में सहभागी बन सके। अतः इस प्रयास रूपी यज्ञ में मैं आप सब को प्रेम और पवित्र विचार की आहुति देने के लिए आमन्त्रित करता हूं। मुझे विश्वास है कि एक दिन यह आध्यात्मिक लक्ष्य अवश्य ही फलित होगा और पथ्वी पर रहने वाले मानस का अतिमानसीकरण होगा।

प्रस्तुत संकलन इसी आध्यात्मिक मिशन की जागति व पूर्ति के लिए किया गया है। हमें आशा है कि यह संकलन एक क्रियात्मक, रचनात्मक और दिव्यात्मक अध्यात्म को पाठकों के हृदय में प्रज्जवलित करेगा और आत्मिक धर्म तथा सच्चे अध्यात्म की खोज करने में सहायता करेगा।

राधास्वामी।

बच्चों पर सत्संग का प्रभाव

महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज राधास्वामी पंथ के विद्वान संत थे। उनके शिष्य फकीरचन्द जी महाराज उनके दर्शन करके घर आए थे। जब ध्यान में बैठे तो गुरू स्वरूप नहीं बना। यदि गुरू स्वरूप नहीं बनता है तो इसका अर्थ है कि मन की वति बिखरी हुई है। जब वति एकाग्र होती है तो गुरू स्वरूप भी बंधने लगता है। जब गुरू स्वरूप ध्यान में नहीं आया तो वे अगले ही दिन फिर गुरू के पास पहुंचे। वे जाति से ब्राह्मण थे, राम, कष्ण आदि अवतारों को बहुत अधिक मानते थे लेकिन गुरू को ब्रह्मा, विष्णु और महेश से भी ऊंचा समझते थे क्योंकि शास्त्र कहता है-

गुरूर्ब्रह्मा गुरूर्विष्णु गुरूर्देव महेश्वरः।

गुरू साक्षात परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

अर्थात् गुरू ब्रह्मा, विष्णु और महेश से भी बड़ा होता है। वह साक्षात पारब्रह्म का रूप होता है। दोबारा दर्शन करके घर गए तो फिर भी गुरू का रूप नहीं बना। रूप नहीं बना तो फिर गुरू के पास पहुंचे। इस प्रकार उन्होंने कई बार लगातार ऐसा किया। अंत में सद्गुरू ने कहा कि इसे रस्से बांधकर घर ले जाओ और इसके बाद यह यहां न आए, अपना काम करे। फिर ऐसा हुआ कि उनकी बदली अरब के बसरा शहर में हो गई। बसरा सूफी फकीरों का शहर रहा है। वहां पर फकीरचंद जी महाराज दस साल तक रहे। वहां जाने के

बाद सद्गुरू का रूप प्रकट होने लगा, अन्तर में नूरी सद्गुरू के दर्शन होने लगे, प्रकाश में रहने लगे। अब वे बार-बार गुरू के पास नहीं जा सकते थे। बार-बार इधर- उधर भागना भी मन के अन्दर भटकन पैदा करता है और भटकन का अर्थ है मन की ताकत का बिखराव तथा जब तक बिखराव है तब तक न तो ख्याली रूप बन सकता है और न ही नूरी गुरू अन्तर में प्रकट हो सकता है। उनके मन की भटकन रूकी, ब्रह्मचर्य का पालन हुआ, सद्गुरू के प्रति प्रेम बढ़ने लगा, इसके साथ ही मन की वति एकाग्र हुई और ख्याल के अन्दर रूप के जो परमाणु बिखरे पड़े थे वे मन की वति एकाग्र होने से एक जगह आकर जुड़ गए और गुरू का रूप ध्यान में प्रकट होने लगा।

फकीरचन्द जी महाराज का जन्म ब्राह्मण परिवार में हुआ जिसमें सनातन धर्म के मजबूत संस्कार थे। राम, कष्ण और हिन्दू देवी-देवताओं की दढ़ता के साथ पूजा होती थी। यही संस्कार फकीरचन्द जी महाराज के अन्दर भी मौजूद थे। वे बचपन में ही भक्ति में इतने डूब गए कि उन्हें सपने में भी राम और कष्ण के दर्शन होने लगे। उनसे बातें करने लगे और वे हर कार्य से पहले उन्हें उसके बारे में बता देते थे। फकीरचन्द जी बताते थे कि राम और कष्ण उनके आगे-२ चलते थे लेकिन एक बार उन्होंने मुझसे ऐसा काम करवाया कि मुझे स्वयं से नफरत हो गई। मैं शंका से भर उठा। जैसे-२ उम्र बढ़ने लगी, समय के गर्म थपेड़ों ने मन को सांसारिक भोग की तरफ मोड़ दिया। देखते-२ संसार के भोग विलासों में फंस

गया। बुरी संगति में फंसने के कारण जीवन का लक्ष्य ही भूल गया। भोग के जीवन से जब एक दिन फुरसत मिली तो अन्तर में झांक कर देखा। अन्तर के अंधकार में स्वयं को टटोलने की कोशिश करने लगा तो पाया कि जैसे उस अंधकार में जीवन की सारी कड़ियां बिखर गई हैं, जीवन रूपी माला के सारे मणिके टूटकर बिखर गए हैं। अन्तर का इतना अंधकार देखकर मैं घबरा गया, बाहर की दुनियां भी अंधकारमय होने लगी। मेरी चेतना के ऊपर पड़ा हुआ आस्तिकता का संस्कार जो बचपन में मुझे माता-पिता से वरदान के रूप में मिला था, पुनः अंकुरित होने लगा। मैंने स्वयं से प्रश्न किया कि फकीर तूं किस लिए इस संसार में आया था। तूं बनना कुछ चाहता था और बन क्या गया है। आंखों से पश्चाताप के आंसू गिरने लगे। बचपन का वह संस्कार बार-२ सामने आता और विरह की अग्नि में जला जाता। बहत्तर घंटे तक अंधेरे कमरे में पड़ा हुआ रोता रहा और ईश्वर से प्रार्थना करता रहा कि हे परमपिता! यदि तूं वास्तव में इस संसार में है तो मुझे दर्शन दे और मनुष्य रूप में मिल, नहीं तो मुझे इस संसार से विदाई दे।

अंतर में एक विचार का जन्म हुआ, उस विचार ने मानसिक चेतना पर एक लकीर खींची, अपने संकल्प की निशानी छोड़ी। उस विचार और संकल्प पर बार-२ ख्याल की टकटकी लगती गई और निशान गहरा होता चला गया। निशान इतना गहरा गया कि आत्मा के अन्दर उतर गया। शरीर और मन की चेतना के सारे संकल्प-विकल्प उसमें विलीन हो गए। केवल एक ही ख्याल मन में गुंजने लगा और

अन्तर में इतना खालीपन भर गया कि वह लगातार बढ़ता ही गया। अंदर का सारा कूड़ा-कर्कट और गन्दे विचार लुप्त होने लगे। चेतना का दामन सभी प्रकार के संस्कारों से शून्य होने लगा। ज्यों-२ आत्मिक मांग बढ़ती गई, इस निःशब्द शुन्यता का घेरा भी बढ़ता चला गया। जब कोई मांग हद से बाहर चली जाती है तो उसकी पूर्ति करने के लिए प्रकति मां को आना ही पड़ता है। शिवव्रतलाल जी कहते हैं कि मांग और पूर्ति का यह नियम प्रकति में अटल है। सच्चे हृदय से मांग उठाओ, पूर्ति अवश्य ही आएगी। फिर कहते हैं कि जितनी बड़ी मांग है और उस मांग के प्रति जितनी अधिक भूख है, उतनी ही बड़ी पूर्ति आएगी। यही डिमांड और सप्लाई का नियम है। इस ब्रह्माण्ड में हर प्रकार की ऊर्जा उपलब्ध है। अच्छा विचार उठाओ तो उसे मजबूती देने के लिए अच्छे विचारों की लड़ी लग जाती है। अगर संकल्प मजबूत है तो अच्छे-२ लोग भी उस विचार को मजबूत करने के लिए हमारे साथ जुड़ते चले जाते हैं। हमारे सपने भी दिव्य होने लगते हैं। इसी प्रकार बुरा विचार भी व्यक्ति को बुराई की तरफ खींचता चला जाता है। यही स्वामी विवेकानन्द भी कहते हैं।

जब मांग हद से बढ़ गई तो प्रकति मां के हृदय में प्रेम की हिलोर उठी। उस मांग की पूर्ति जिस स्रोत से हो सकती थी प्रकति मां ने उसका रूप धरा और फकीर के सपने में शिवव्रतलाल जी महाराज के रूप में प्रकट हो गई। सपने में साधु के दर्शन हुए, उन्होंने अपना नाम और ठिकाना बताया और लुप्त हो गए। फकीर की आत्मा

दिव्यता से भर गई। अन्तर का अंधकार छट गया। शरीर, प्राण और मन में प्रकाश ही प्रकाश भर गया। बदन में उमंग की लहर उठने लगी और चल दिए लाहौर की तरफ जहां का ठिकाना साधु महाराज ने बताया था। उसी ठिकाने पर जब उसी साधु को बैठे हुए पाया तो फकीरचन्द जी की खुशी का ठिकाना न रहा। उनकी इच्छा थी कि मनुष्य रूप में ईश्वर की प्राप्ति हो। ऐसा चमत्कार देख फकीरचन्द जी शिवव्रतलाल जी महाराज के चरणों में साष्टांग लेट गए और आंखों से अश्रुधारा बहने लगी।

शिवव्रतलाल जी ने उन्हें उठाया और अपने सिने से लगा लिया। बूंद का मिलन प्रेम सिंधु से हुआ। ऐसा लगा जैसे बरसों से लगी हुई सीने की आग शांत हो गई। बातचीत करने के बाद शिवव्रतलाल जी को आभास हुआ कि फकीर के हृदय में सनातनी विचार बहुत गहराई से समाये हुए हैं। सतगुरू के पास यदि व्यक्ति अपने हृदय का प्याला पूर्व संस्कारों और पूर्व आग्रहों से भरा हुआ लेकर जाता है तो वह सतगुरू की मौज से खाली रह जाता है। अर्जुन जब श्री कष्ण के पास गया तो उन्होंने उसे संसार के सारे धर्मों का त्याग करने के लिए कहा। नारद जब ब्रह्मा के बालपुत्रों सनत, सनतकुमारादिक के पास दीक्षा लेने के लिए गए तो उन्होंने कहा कि हे नारद! अब तक तुमने जो सीखा है या तुम्हें जो भी याद है उस सबका परित्याग कर, तभी तुम आत्मविद्या के बारे में जान सकते हो। बुल्लेशाह जब अपने गुरू के पास गए तो उन्होंने सारे धर्म शास्त्रों को

आग लगा दी जो उन्होंने आजीवन संजो कर रखे थे। उन्होंने कहा कि ये धर्म शास्त्र ही उनके और खुदा के रास्ते में बाधा थे। प्रभु के प्यार में जब व्यक्ति डूबता है तो उसके लिए इन चीजों का कोई भी महत्त्व नहीं रह जाता है।

शिवव्रतलाल जी ने जब फकीर के हृदय की परेशानी देखी तो उन्होंने कहा कि फकीर! तूं ब्राह्मण है, गंगाजल को सबसे पवित्र समझता है। इसलिए अपनी हथेली पर ये गंगाजल रख और शपथ ले कि जो भी अनुभव तुझे होगा वह दुनियां के सामने निष्पक्ष होकर वर्णन करेगा। फकीरचन्द जी ने आजीवन उसी शपथ का पालन किया और कहा कि मैं किसी के अन्दर नहीं जाता, किसी के अन्दर प्रकट नहीं होता लेकिन भक्त कहते हैं कि मैं उनके अन्दर प्रकट होता हूं और उनके कठिन से कठिन कार्य कर देता हूं। बिमारियों के इलाज बता देता हूं। किसी भी होने वाले नुकसान से बचा देता हूं। लेकिन मुझे इस का कुछ ज्ञान नहीं होता है। लगभग सभी गुरू शिष्यों को इस ज्ञान से वंचित रखते है और उनका धन लूटते हैं। ऐसे गुरू और उनके शिष्य दोनों ही नरक के भागी बनते हैं।

गुरू लोभी शिष्य लालची दोनों खेलें दाव।
अधबीच में डूब गई थी पत्थर की नाव।।

ऐसे गुरूओं की नाव में पानी भर जाता है जिससे गुरू और शिष्य दोनों ही डूब जाते हैं। वे कहते थे कि शिष्य का जो कार्य पूर्ण होता है वह उसके श्रद्धा और विश्वास के कारण होता है। इसलिए

जब तक व्यक्ति गुरू के दर्शन या किसी अवतार या मसीहा के दर्शन को ही भगवान के दर्शन मान लेता है तब तक वह काल और माया के चक्कर में रहता है। मन के फेरे से बाहर नहीं जा पाता है। आत्मा के अनुभव में जाने के बाद सारे रूप व आकार विलीन हो जाते हैं। न वहां कोई शास्त्र बचता है, न तीर्थ स्थान और न ही कोई अवतार, मसीहा या हजरत। बचता है केवल आत्मा का निज-स्वरूप।

शिवव्रतलाल जी महाराज के दूसरे शिष्य रामसिंह अरमान थे जो संतगति को प्राप्त हुए। उनके हृदय पर आर्य समाज की शिक्षाओं की गहरी छाप थी। उन्होंने सारा जीवन गरीबी और एक झोंपड़ी में बिताया। उनके सामने ही उनकी पांच संतानें गुजर गई लेकिन कभी भी उनकी आंखों से एक भी आंसू नहीं निकला। वे कहते थे कि जिसकी चीज थी उसने वापिस ले ली। मुझे इतनी ही ड्यूटी मिली थी जो पूरी हुई। परमात्मा की जो अमानत मेरे पास थी वह उसने वापिस ले ली। यह मेरा सौभाग्य था कि उसने मुझे इतने समय के लिए बच्चों के पालन-पोषण की यह ड्यूटी सौंपी।

एक बार उनके गुरू शिवव्रतलाल जी ने उन्हें चिट्ठी लिखकर लाहौर आने का बुलावा भेजा। उन्होंने वापिस पत्र में लिखा कि आप मेरे सर्वेसर्वा हैं लेकिन मैं आ नहीं सकता क्योंकि मेरे पास आने के लिए पैसे नहीं हैं और मैं किसी से पैसे मांग नहीं सकता हूं। सतगुरू उनके इस आत्म स्वाभिमान से अति प्रसन्न हुए और उन्हें वहीं से बैठे-२ आशीर्वाद दे दिया और कहा कि एक समय आएगा जब मैं

स्वयं किसी दूसरे रूप में तुम्हारे पास आऊंगा और तुम्हारी कीर्ति देश-विदेशों में फैलेगी। यही हुआ जब मेरे सतगुरू राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज, जो बाल-ब्रह्मचारी थे, उनके चरणों में पहुंचे लेकिन अरमान साहब इतने निस्वार्थ थे कि उन्हें भी दो बार वापिस यह कहकर भेज दिया कि तूं अभी नाम की दीक्षा के योग्य नहीं है। तीसरी बार जब वे गए तो अरमान साहब ने उन्हें नाम की दीक्षा देकर कहा कि तूं मेरा गुरू शिवव्रतलाल है और मुझे इस भवसागर से पार करने के लिए रूप बदल कर मेरे पास आया है। गुरू का अपने शिष्य के प्रति ऐसा समर्पण सम्भवतः संसार में पहली बार हुआ था।

शिवव्रतलाल जी महाराज के दोनों शिष्य विपरीत स्वभाव और भिन्न-२ पारिवारिक पष्ठभूमि से थे लेकिन दोनों सरल हृदय थे। बचपन में हृदय के ऊपर जो संस्कार पड़े वही अपने समय पर जाकर जागत हुए और आत्मा की मांग के अनुसार परम् पुरूष के रूप में आए महर्षि शिवव्रतलाल जी से दोनों का मिलन हुआ। मनुष्य को बचपन में मिले संस्कार उसके भाग्य का निर्माण करते हैं। जब तक बच्चों के अन्दर अच्छे संस्कार और समर्पण की भावना नहीं आएगी तब तक किसी भी देश या समाज का भविष्य उज्जवल और सुरक्षित नहीं हो सकता है।

कबीर साहब के पास एक पति-पत्नी अपने छोटे बच्चे के साथ गए। उस बच्चे का नाम मुक्तामणि था। आठ-दस साल का विवेकी लड़का था। माँ-बाप ने कबीर साहब के चरणों में माथा

टिकाया तो उन्होंने आशीर्वाद दे दिया। फिर बच्चे ने माथा टेका, अधिकारी जीव था। कबीर साहब कहने लगे कि बेटा! मांग क्या मांगना चाहता है। महात्माओं के बारे में कहा जाता है -

कभी देते सीत मीत, कभी देते सिर सांटे।

हम सौदागर आए जी, जग तूं क्यूं नाटे।।

मुक्तामणि कहने लगा कि हे दाता! मैं तो बच्चा हूं, मैं आपसे क्या मांग सकता हूं, मैं तो खिलौने मांग सकता हूं, इससे आगे मैं नहीं सोच सकता हूं। मेरी रूचि खिलौनों में है इसलिए इससे अधिक मेरे दिमाग की पहुंच नहीं है। आपके पास जो वस्तु सबसे अच्छी हो वह मुझे दे दीजिए क्योंकि मेरे पिता जी कहते हैं कि आप तो सब कुछ जानते हैं। यह भी जानते हैं कि मेरे लिए क्या ठीक है और क्या नहीं। बालक की बातें सुनकर कबीर साहब की आंखों में पानी भर आया। सोचने लगे कि देखो कितना भागी बच्चा है। इतनी छोटी आयु और इतना अधिक ज्ञान। यह ज्ञान पुस्तक और शास्त्रों के समस्त ज्ञान से श्रेष्ठ है। हम जब ईश्वर से प्रार्थना करते हैं तो कहते हैं कि भगवान मुझे यह चीज दीजिए और यदि वह चीज नहीं मिलती है तो हम शिकायत करते हैं। बालक मुक्तामणि का तर्क कह रहा है कि मनुष्य अपनी रूचि या बुद्धि की पहुंच से दूर की वस्तु नहीं देख पाता है, उसकी नजर कुछ कदम तक ही देख सकती है। उसके आगे क्या घट रहा है वह दष्टि में नहीं आ रहा है। संभव है आज की चाल या आज का विचार कल के लिए घातक हो या घाटे का सौदा हो। आज के जिस लाभ के लिए हम

प्रार्थना कर रहे हैं, संघर्ष कर रहे हैं, हो सकता है वह उचित न हो और आज का असफल होना कल की बड़ी सफलता की तरफ ले जा रहा हो। इसलिए ईश्वर से केवल इतनी प्रार्थना करना उचित है कि हे परम् पिता! हमें अपनी मर्जी में बनाकर रखना, हमारा सौभाग्य हो यदि हम आपकी इच्छा की पूर्ति में सहभागी हो सकें और आपका पूर्ण यंत्र बनकर कार्य कर सकें। हम हमारी इच्छा के गुलाम न हों बल्कि आपकी इच्छा का बिना शिकायत किए, बिना फल की इच्छा किए पालन कर सकें।

बालक मुक्तामणि की बात ने कबीर साहब के दिल पर असर किया। दिल के अन्दर प्रेम हिलोरें मारने लगा। दया सागर के अन्दर हलचल पैदा हुई। कबीर साहब का प्रेम मुक्तामणि की तरफ उमड़-उमड़ कर बहने लगा। उन्होंने मुक्तामणि का हाथ अपने हाथों में लिया और उसे हृदय से लगा लिया। कहा कि जा, कहीं घूम, अब तेरा जीवन सफल है। तू असहाय का सहारा बनेगा। अनाथों का नाथ बनेगा। मतप्रायः लोगों की जीवन संजीवनी बनेगा। जो भी तेरे पास तेरी तरह सरल हृदय के साथ आएगा उसका हृदय रूपी प्याला तेरी नजरों से ही परिपूर्ण हो जाएगा। इतना कहना था कि मुक्तामणि का हृदय खुशी से गद्‌गद होकर उछलने लगा। जैसे उसे जीवन का लक्ष्य मिल गया हो। वह कबीर साहब के चरणों में साष्टांग दण्डवत होकर लेट गया। उसकी नजरों से कबीर साहब के प्रति प्यार टपकने लगा। कबीर साहब भी जब तक वह उनके पास रहा उसकी तरफ कभी-कभी प्यार भरी नजर से देखते रहे।

कबीर साहब के पास जितने सेवार्थी थे वे सभी बालक के प्रति उनका व्यवहार देखकर हैरान थे। जब मुक्तामणि और उसके माता-पिता चले गए तो उनके मुख्य शिष्य धर्मदास उनसे पूछने लगे कि हे शहनशाओं के शहनशाह! इस बालक ने ऐसा क्या किया जो हम इतने वर्षो से नहीं कर पाए। ऐसा लगा मानों इस बालक पर आप अपनी सारी ही दौलत लूटा देंगे। ऐसा आशीर्वाद आपने आज तक हमें नहीं दिया। इस रहस्य के बारे में कपया पर्दा उठाने का कष्ट करें।

कबीर साहब कहने लगे - धर्मदास! तुम्हारे दिल का सफा ज्ञान की बातों से भरा पड़ा है, तुमने अनेकों शास्त्र पढ़ डाले हैं और उनके संस्कार तुम्हारे हृदय की गहराई में बैठ गए हैं। मुझे तुम्हारे दिल रूपी किताब से पहले सारे पूर्व संचित ज्ञान के अक्षर मिटाने होंगे फिर मैं उस पर अपनी कोई बात लिख सकूंगा। बालक मुक्तामणि का हृदय रूपी कागज कोरा है, उस पर मैं जो चाहूं लिख सकता हूं। तुम्हारे हृदय का कागज मैं चाहकर भी पूरी तरह से साफ नहीं कर सकता लेकिन उसका तो पहले से ही सफेद है। उसके अन्दर डाला गया संस्कार अभी से अपना कार्य करना आरम्भ कर देगा जिससे उसके जीवन को गति मिलती चली जाएगी। उसके शब्दों ने मेरे हृदय के सागर में हलचल पैदा की। मैं बिना चाहे भी उसकी तरफ खिंच गया और एक संत के अन्दर किसी के प्रति इतना प्यार पैदा होना उस व्यक्ति की कामयाबी है। संत सतपुरूष का अवतार होते हैं, उनके हृदय के अन्दर एक व्यक्ति की चेतना अवश्य होती है लेकिन

वह चेतना सतपुरूष की चेतना के साथ अटूट अंग बनकर जुड़ी हुई होती है। उसके अन्दर परमेश्वर की इच्छा कार्य करती है। गुणात्मक दष्टि से संत की आत्मा और परमात्मा की चेतना में कोई भेद नहीं रहता है। कहा गया हैः

राम के दर्शन संतों माहि।
राम और संत में अंतर नाहि।।

कबीर साहब कहते हैंः

राम कबीरा एक हैं कहन सुनन को दोय।
दोयकर जो जन जाणै सतगुरू मिला न सोय।।

उनकी आत्मा का जोड़ सतपुरूष के साथ हो जाता है। सतपुरूष का कलमा उनके हृदय में गूंजता रहता है, वे परमात्मा की शक्ति का इस संसार में स्रोत हैं, उसका यंत्र बनकर कार्य करते हैं। उनके अन्दर से इस नाशवान संसार में सतपुरूष की ताकत कार्य करती है लेकिन साधारण मनुष्य इस बात से बेखबर रहते हैं क्योंकि उनका व्यवहार एक साधारण व्यक्ति के समान ही रहता है, बल्कि कभी-कभी वे बहुत सख्त और असाधारण दिखाई देते हैं, उनकी बातें सांसारिक लोगों की समझ से बाहर होती हैं। जो व्यक्ति जाने अनजाने उनके हृदय में छाप छोड़ देता है वही व्यक्ति उनके आशीर्वाद को ग्रहण करता है। हमेशा ऐसे व्यक्ति के ऊपर कपा सिंधु की छाया बनी रहती है। ऐसी छाप वही व्यक्ति छोड़ सकता है जो निस्वार्थ और निश्चल होकर उनसे बातें करता है, व्यवहार करता

है। संत तो दया और कपा के वहद भण्डार होते हैं जिसे केवल प्रेम के द्वारा ही लूटा जा सकता है।

ये तो घर है प्रेम का खाला का घर नांह।
शीश काट पग तलै धरै तब पहुंचे वहां।।

अहंकार का मर्दन करने पर और प्रेम को परवान चढ़ाने पर ही इस कपा सिंधु की प्राप्ति हो सकती है। संत की दौलत को यदि लूटना चाहते हो तो अपने हृदय में प्रेम पैदा करो, इसके सिवाय दूसरा रास्ता नहीं है। आप जैसी सेवा करेंगे उसका फल अवश्य मिलेगा लेकिन भण्डार में किसी का प्रवेश केवल निस्वार्थ प्रेम से हो सकता है। ऐसा प्रेम जो खुद को जलाता है लेकिन अपने लिए कोई कामना नहीं करता है। तब मुर्शिद और मुरीद के बीच जो इश्क की धार बहती है उसमें सतपुरूष स्वयं धारा बनकर बहता है, जिसमें स्नान करने से सारा संसार नवजीवन की प्राप्ति कर सकता है। पूर्ण गुरू और गुरूमुख शिष्य का मिलन एक ऐसा घाट होता है जहां विश्राम करने से बड़े-बड़े पापी पार उतर जाते हैं, आत्मा के सारे मैल झड़ जाते हैं और वह निर्मल हो जाती है।

कबीर साहब अपने शिष्यों को बताते हैं कि मुक्तामणि के हृदय की धार और मेरे हृदय की धार एक दूसरी को छू गई। बीच में मन के सारे आवरण और पर्दे प्रेम की आंधी में ढ़ह गए। विचार रूपी बादल जो चेतना के नीले आसमान और आत्मा रूपी सूर्य को ढक रहा था वह प्रेम की गर्मी पाकर भाप बनकर उड़ गया तथा उसके

बाद जो अन्तर्मिलन हुआ मुक्तामणि ने उसका भरपूर आनंद लिया और वह यहां से जो संस्कार लेकर गया वह संस्कार उसके जीवन के दिशा निर्देशन में निर्णायक भूमिका अदा करेगा।

कबीर साहब कहने लगे कि धर्मदास तेरे अन्दर जो संस्कार पड़े हुए हैं उन्हें मिटाने में बहुत समय लग जाएगा। उन संस्कारों के कारण तेरे प्रश्न खड़े होते रहेंगे। एक प्रश्न का समाधान करूंगा तो दूसरा प्रश्न खड़ा हो जायेगा। तेरे अन्दर अनेकों बिन्दू हैं जिनके ऊपर से मन घूमता रहता है और उनके आनन्द में रस लेता रहता है। तेरे मन की ताकत बंधने में समय लेगी। बच्चे का क्या है। वह तो खेलता-खेलता भी कबीर का ख्याल करता रहेगा और अधिक मस्ती में आएगा तो मुझे भी भूल जाएगा और मेरे पास आएगा तो खेल को भूल जाएगा। उसे न तो कबीर को याद रखने की चिंता है और न ही भूलने की। फिर भी कोई अपराध भावना नहीं है। वह जिस कार्य में लगेगा वहां पूरे मन के साथ लगेगा। इसीलिए ईसा मसीह कहते हैं कि यदि ईश्वर के साम्राज्य में प्रवेश करना चाहते हो तो बच्चा बनो। यह फर्क है तुममें और इस बच्चे में। तुम बुद्धि में अधिक रहते हो वह प्यार का भूखा है। थोड़े से प्रेम में ही वह अपना अतीत भूल जाता है, तुम्हारी जड़ें अतीत की मोहताज हैं और जो व्यक्ति अतीत को नहीं भूलना चाहता है इसका अर्थ है वह विकास करने से इंकार कर रहा है। आगे जाने की बजाय पीछे लौट जाना चाहता है। यदि आज का दिन नहीं मरेगा तो कल का

सूर्य कैसे उदय हो सकता है। ऐसा नहीं है कि अतीत कुछ नहीं है, बल्कि अतीत हमारी एक अमूल्य धरोहर है, जब चलते-चलते हम उदास हो जाते हैं तो हमें अपने अतीत पर नजर डाल कर देख लेनी चाहिए कि हम कितना आगे आ चुके हैं। कल को हमने क्या गलती की थी और आज नहीं करनी है। अतीत की अच्छी यादों को समेटते हुए, आदर्शो को संचित करते हुए हमें आगे बढ़ते चले जाना है। आज की उदासी को अतीत की सुनहरी यादों में भुलाकर जीवन यात्रा को सुगम बनाना है। अतीत हमारा इतिहास है उससे सबक लेना है, लेकिन उसके साथ चिपक कर ठहर नहीं जाना है चाहे वह रोचक है, भयानक या यथार्थ। बुद्धिजीवी व्यक्ति के अन्दर अतीत के इतने संस्कार जमा हो जाते हैं कि उनसे निकल पाना कठिन हो जाता है, कहीं हिन्दू या मुसलमान होने का संस्कार, कहीं बड़ा तो कहीं छोटा बनने का, कहीं ब्राह्मण तो कहीं क्षत्रिय होने का संस्कार हमारे अन्दर जड़ जमाए हुए हैं। केवल प्रेम की शक्ति ही उसे निर्मूल कर सकती है। प्रेम की बाढ़ के आगे छोटे-छोटे घास व झाड़ियां समूल नष्ट हो जाते हैं। व्यक्ति सब कुछ भूल कर अपने प्रेमी के ख्याल में समा जाता है। जब ख्याल आता है तो स्वतः ही आंखें बन्द हो जाती हैं। भिन्न-भिन्न विचारों के अन्दर से घूमने वाली वति एक जगह आकर एकाग्र हो जाती है जो तीसरे तिल (दोनों आंखों के मध्य) पर वत बनाकर सुदर्शन चक्र की तरह घूमती है और मन व बुद्धि को प्रकाश से भर देती है।

बच्चे को न दुःख की परवाह होती है न सुख की। खेलता-खेलता थक जाता है लेकिन उसी तत्परता से पुनः खेलने के लिए तैयार हो जाता है। बच्चे का कपड़ा फट जाता है, मैला हो जाता है, क्या उसको इसका ख्याल रहता है। करोड़पति व्यापारी का बेटा है, अगर खेलते-खेलते उसके कपड़े मैले हो गए या फट गए तो क्या वह इसका ख्याल करता है, नहीं, वह फिर अपने खेल में उसी धुन से लग जाता है। समाधि और क्या होती है? जब आदमी अपने कार्य में इतना व्यस्त हो जाए कि वह खुद को भी भूल जाए, यही है समाधि और कर्मयोग की पराकाष्ठा। ऐसे व्यक्ति को कर्मयोगी की उपाधि दी जा सकती है। जब हम बड़े होते हैं तो इन बातों का ख्याल बढ़ता जाता है जिसके कारण मन की वति भी बिखराव में आ जाती है और हम एकाग्र होकर नहीं खण्ड-खण्ड होकर जीते हैं।

घर के बड़े व्यक्ति जैसा कार्य करते हैं बच्चे के अन्दर वैसा ही संस्कार पकता चला जाता है। यदि हम रिश्वत लेते हैं तो बच्चा उसे सही मानने लगता है, यदि हम शराब का धंधा करते हैं तो घर में हर वक्त शराब की बातें होती हैं, बच्चे के अन्दर भी वह विचार घर करता चला जाता है। यदि उसके मां-बाप अपने बड़ों का निरादर करते हैं तो ऐसी बातें सबसे पहले बच्चा ही पकड़ता है क्योंकि उसकी सबसे पहली पाठशाला उसका घर ही है। जो संस्कार बच्चे ने संचित किए हैं, वे कहां पर कार्यान्वित होंगे? स्पष्ट है उसका सबसे निकट का रिश्ता परिवार के साथ है जहां पर वे फलीभूत होंगे, इसका सबसे

पहला प्रभाव परिवार पर ही पड़ेगा। यदि हम अपने प्रति अपने बच्चों से प्रेम और दया का भाव चाहते हैं तो हमें दीन-दुःखियों का दर्द समझकर उसमें हिस्सा बंटाना होगा, हमें भूखे की भूख मिटानी होगी, असहाय की सहायता करनी होगी तभी हमारे बच्चे जरूरत के वक्त में हमारी सहायता कर सकेंगे, हमारे साथ ईमानदारी बरत सकेंगे। हम यदि धोखे से बात करेंगे तो बच्चा भी हमारे साथ धोखे से बात करेगा। यह अवश्यमभावी है। हमारा व्यवहार परिवार को ही नहीं बल्कि समूचे समाज व मानव जाति को प्रभावित करता है। अच्छा या बुरा होने के लिए मूल रूप से परिवार या कह सकते हैं माता-पिता ही जिम्मेवार होते हैं। हम इस जिम्मेवारी से बच नहीं सकते हैं। मेरे सद्गुरू कहते थे कि माता-पिता व बुजुर्गों की सेवा व्यक्ति का सबसे बड़ा धर्म है और राधास्वामी पंथ की मूल शिक्षा है। सुरत-शब्द योग की यह पहली पौड़ी है जिसके ऊपर पैर रखकर ही आगे बढ़ा जा सकता है। वे कहते थे कि यदि व्यक्ति अपने माता-पिता से प्यार नहीं कर सकता है तो वह सद्गुरू से प्यार नहीं कर सकता है।

सद्गुरू का शिष्य को दात देने का तरीका भी अनोखा होता है। सुना है कि रविदास ने राजा पीपा को मौज देने की कोशिश की थी लेकिन जिसके भाग्य में होती है यह उसी को मिलती है। वह मौज धोबी की लड़की को मिल गई। उसका अन्दर का पर्दा खुल गया, कहते हैं उसका ज्ञान चक्षु खुल गया। जब राजा पीपा को यह पता चला तो वह घर आकर रोने लगा कि हाय लोकलाज तेरा सत्यानाश

हो, हाय जाति-पाति तेरा सत्यानाश हो। जब वह संत रविदास के पास पहुंचा तो उसने यह सोचा कि यह तो चमार है, मुझे क्या देगा, लोग मुझपर हसेंगे कि इसने चमार को अपना गुरू बना लिया है।

राजा पीपा रविदास जी के पास नाम लेने के लिए गया था। सत्संग करने के बाद रविदास ने कहा कि आओ महाराज आपको मौज की दात देता हूं। उनकी कठौती में जो चमड़े का गेरूआं पानी था उसे पिलाने लगे। राजा ने सोचा कि आज तो तूं इस चमार के चक्कर में फंस गया, रविदास आज तुझे अपनी जाति में मिलाएगा, किस तरह से इसके चंगुल से निकला जाए। उसने ओक के नीचे से सारा पानी निकाल दिया जिससे उसके कपड़े रंग से भीग गए। भागकर घर पहुंचा, चैन की सांस ली, रानी से कहने लगा कि आज तो बड़ी मुश्किल से बच कर आया हूं। रानी ने भी भगवान का शुक्रिया अदा किया।

रानी ने राजा के वे कपड़े साफ करने के लिए धोबी के घर पहुंचा दिए। धोबी ने अपनी बेटी से कहा कि बेटी यह कपड़े अधिक रंग गए हैं, इन पर दाग पड़ गए हैं इसलिए तूं इन दागों को चूस कर मिटा दे और फिर भट्टी में डाल देना ताकि यह अच्छी तरह से साफ हो जाएं क्योंकि ये राजा के कपड़े हैं। कहा जाता है कि कपड़ों का गेरूआं रंग चूसने के बाद उस लड़की के अन्दर का पर्दा खुल गया। वह तीन लोक की बातें बोलने लगी। जब राजा को पता चला तो वह पश्चाताप से रोने लगा और अपने बड़प्पन को लांछन देने लगा। फिर दौड़ कर रविदास के पास पहुंचा और वही गेरूआं

पानी पिलाने को कहा। लेकिन रविदास कहने लगे कि महाराज, अब वह मौज कहां, वह तो धोबी की लड़की ले गई। वह तो कोई वक्त था जब मेरा दिल तुझ पर आ गया था, मैं दिल से मजबूर होकर अनाधिकारी को अपनी दौलत लुटा रहा था लेकिन कुदरत की मर्जी देखो कि वह मौज उड़कर अपने सही स्थान पर चली गई। अब तो हे राजा, विधिपूर्वक नामदान लो और मेहनत से कमाई करो, तब जाकर कुछ मिलेगा। इसीलिए कहा गया है कि कभी तो संत सीत-मीत देते हैं और कभी सिर का सौदा करते हैं। यह कहानी भी बताती है कि बच्चों का हृदय सरल होता है, उस पर सत्संग का असर तुंरत हो जाता है, वे किसी भी प्रभाव को तुरंत ग्रहण कर लेते हैं।

गुरू अर्जुन देव के पास एक लड़का अलबेला सत्संग में जाने लगा। वह बहुत ही भोला था, बुद्धि की दावपेंच बिल्कुल नहीं समझता था। वह बार-बार गुरू जी को कहने लगा कि महाराज मुझे नामदान दे दो। गुरू अर्जुन साहब उसे धमका देते कि अभी नहीं। वह फिर-फिर जिद करता लेकिन गुरू जी ने उसकी एक नहीं सुनी। एक दिन अर्जुन साहब सुबह-सुबह घूम कर आ रहे थे। जैसे ही उसे दिखाई दिए वह भाग कर उनके पास आया। वह लांघन करके आ रहा था, हाथ में पाजामें का नाड़ा पकड़ा हुआ था। गुरू जी से कहने लगा गुरू जी नाम बता दो। अर्जुन साहब उसकी हालत देखकर हसंने लगे और उससे कहा-ओ बेला तूं राह गिणै न गेला। अलबेला ने सोचा कि गुरू जी ने इतने दिनों के बाद बड़ी मुश्किल से नाम बताया है। वह

खुशी-खुशी उछलने कूदने लगा और नाम का स्मरण करने लगा - **ओ बेला तूं राह गिणै न गेला।**

कुछ ही दिनों में उसकी हालत बदलने लगी। उसके अन्दर अलग ही तरह का हौंसला और विश्वास पैदा हो गया। गुरूजी के दूसरे शिष्यों ने जब यह देखा तो उन्होंनें गुरू जी से कहा कि आप तो कहते थे कि अलबेला अभी बच्चा है उसे दीक्षा नहीं देंगे लेकिन आपने उसे दीक्षा देकर उसका चोला बदल दिया। गुरू जी ने उसे अपने पास बुलाया और पूछा कि मैंने तुझे कब दीक्षा दी। उसने सारी बात बताई। गुरू जी ने सभी शिष्यों को उसके प्रेम और विश्वास का उदाहरण दिया। अतः नाम से भी महत्वपूर्ण अपने इष्ट या सतगुरू में प्रेम और श्रद्धा है जिसके द्वारा व्यक्ति ख्याल से अपने प्रीतम के साथ जुड़ जाता है और जब बच्चे के समान हृदय निर्मल हो तो उसका प्रभाव और भी गहरा हो जाता है तथा व्यक्तित्व पर गहरी छाप छोड़ता है। यद्यपि नाम का भी अपना विज्ञान होता है लेकिन यदि प्रेम और श्रद्धा नहीं हैं तो नाम का स्मरण प्रभावशाली नहीं हो पाता है।

कबीर साहब अपने परिवार के पालन-पोषण के लिए ताना तनते थे और कपड़ा बुनते थे। वे किसी का चढ़ावा स्वीकार नहीं करते थे। निस्वार्थ होकर निष्पक्ष बात बोलते थे और सत्संग करके जीवों का कल्याण करते थे। जिसका प्रभाव उनके परिवार पर भी झलकता था। वे गहस्थी में थे लेकिन मन से फकीर थे और फकीरी में ही मस्त रहते थे। उनके समय में कांशी नगरी में एक महान विद्वान

पण्डित था जिसने अपना नाम बदलकर सर्वाजीत रख लिया था। कहते हैं कि उसने शास्त्रार्थ में कांशी के सभी प्रकाण्ड पंडितों को हरा दिया था इसलिए अपना नाम सर्वाजीत रख लिया लेकिन उसकी माँ ने उसे कभी सर्वाजीत कहकर नहीं पुकारा। जब उसने अपनी माँ से इसका कारण पूछा तो उसने कहा कि बेटा! जब तक तूं कबीर को नहीं जीत लेता तब तक मैं तुझे सर्वाजीत नहीं मान सकती। पुत्र ने कहा कि माँ ये काम तो बहुत आसान है। उसे तो मैं शास्त्रार्थ के योग्य भी नहीं समझता, वह तो एक अनपढ़ जुलाहा है उसे शास्त्रों का कोई ज्ञान नहीं है। मैंने बचपन में उनकी एकाध वाणी सुनी है जिसमें मुझे कोई सार दिखाई नहीं दिया। मैं अभी गया और अभी आया। वह पण्डित एक गाड़ी में अपने सारे शास्त्र लाद कर चल पड़ता है। पूछता-पूछता कबीर साहब के घर के पास पहुंच जाता है। बाहर एक पन्द्रह साल की लड़की झाडू लगा रही थी। उससे पूछा कि कबीर का घर कहां है? उसकी आवाज के अन्दर उसके अहंकार की बू आ रही थी। लड़की को उसके मन की स्थिति भांपने में देर न लगी। उसने कहा कि श्रीमान्! मैं उनकी लड़की कमाली हूं, आप कपया अपना परिचय दें।

आगन्तुक- मैं एक ब्राह्मण हूं।

कमाली- क्या आपने ब्रह्म को पा लिया है?

आगन्तुक- मेरे पास दर्शन की पुस्तकों का विपुल भण्डार है और इन पुस्तकों के माध्यम से मैंने ब्रह्म का बहुत

ज्ञान प्राप्त किया है इसलिए अब मेरे लिए कुछ भी जानने योग्य नहीं रह गया है।

कमाली- मैं जानने की बात नहीं करती महोदय! मेरा प्रश्न है कि क्या आपने ब्रह्म को पा लिया है। जिससे मैं आपकी पहचान ब्राह्मण के रूप में कर सकूं। यदि ऐसा नहीं है तो आप अपनी पहचान ठीक से दीजिए।

सर्वाजीत अवाक् रह गया और छोटी सी लड़की की स्पष्टवादिता और विवेकपूर्ण बात की अनदेखी न कर सका। भीतर ही भीतर उसके अन्दर कंपन पैदा हुई। उसने अपनी हताशा छिपाने की कोशिश की लेकिन चेहरे पर उसका प्रभाव साफ दिखाई दिया क्योंकि चेहरा व्यक्ति का दर्पण होता है जिसमें सारा व्यक्तित्व साफ-२ झलकता है। कमाली ने अतिथि से फिर पूछा-

कमाली- आपने शास्त्रों से भरी यह गाड़ी क्यों ले रखी है?

आगन्तुक- मैं कबीर के साथ शास्त्रार्थ करना चाहता हूं।

कमाली- श्रीमान्! आप कबीर साहब के साथ शास्त्रार्थ कैसे कर सकते हैं क्योंकि इस घर में तो केवल उनका शरीर रहता है। उनका मन ब्रह्म की चोटी पर वास करता है और आत्मा सच्चखण्ड के शिखर पर। आपकी पहुंच तो ब्रह्म तक भी नहीं है फिर आप उनकी आत्मा की झलक कैसे पा सकते हैं। उनके बारे में इतना कहा जा सकता है-

कबीर का घर शिखर पर जहां सिलहिली गैल।

पांव ने ठहरे पपील का पण्डित लादे बैल।।

अर्थात् कबीर एक ऐसे शिखर पर रहते हैं जहां का रास्ता अत्यंत चिकना और फिसलने वाला है, जहां पहुंचते-२ बड़े-२ सूरमा धराशाही हो जाते हैं, जहां पर एक कीड़ी का पैर भी नहीं ठहर पाता है और अरे पण्डित! तू वहां शास्त्रों से भरी बैलगाड़ी लेकर जाना चाहता है।

सर्वाजीत छोटी सी लड़की के भोलेपन के तरकश से निकलते हुए तीरों को सहन नहीं कर पा रहा था और कुछ कह भी नहीं पा रहा था लेकिन अन्दर ही अन्दर उसकी विद्वता भरी बातें एक अनबूझ पहेली की तरह कांटा बनकर उसकी चेतना की पीड़ा बनती जा रही थी और उसका कौतुहल बढ़ता ही जा रहा था। लड़की बहुत ही प्यार से बोलती जा रही थी। उसका भोलापन और सरलता उसकी बातों के प्रभाव को और भी गहराई प्रदान कर रहे थे लेकिन साथ ही उसकी बातों की चोट उसके अहंकार को आहत कर रही थी। उसके अहंकार पुरूष को लहुलुहान कर रही थी। वह कभी इस बात की कल्पना भी नहीं कर पाया था कि एक छोटी सी लड़की इस प्रकार उसकी चेतना में सूल का काम करेगी। किसी औरत जात से तो उसने कभी ऐसे व्यवहार की कल्पना ही नहीं की थी। यह परिस्थिति उसके लिए सम्भवतः जीवन की सबसे विकट परिस्थिति थी। उसने कितने धुरंधर विद्वानों के मूंह पर शब्दों का ताला जड़ दिया था, कितनी बड़ी-२ सभाओं में उसने अपनी जीत की पताका फहराई थी और कितने बड़े-२

शास्त्रों के योद्धा सहज ही उसके सामने समर्पण कर देते थे। आज वह स्वयं उस परिस्थिति के कांटे के दर्द को चुपचाप पीए जा रहा था।

प्रकति का यह नियम है कि यहां जैसा बीज बोया जाता है वैसा ही फल भोगना पड़ता है। यदि हमने नफरत का चुनाव किया है तो नफरत का फल मिलेगा और यदि हमने दुःखों का चुनाव किया है तो दुःख हमेशा हमारे दरवाजे पर दस्तखत देते रहेंगें क्योंकि हमने स्वयं ही अपना वातावरण निर्मित किया है। नकारात्मक सोच मनुष्य को उदासी देती है। जो दूसरे को दबाना चाहता है, वह कभी भी भय से निजात नहीं पा सकता है क्योंकि वह हमेशा जीतना चाहता है और यह जीत का दबाव उसकी चेतना को कुंठित कर देता है। प्रकति सबके लिए बराबर के अवसर लेकर आती है इसलिए इस पर सबका बराबर का अधिकार है। यदि हम स्वयं आजाद रहना चाहते हैं तो हमें दूसरों की आजादी की भी इज्जत करनी पड़ेगी। दूसरे को गुलाम बनाने के प्रयत्न में हम स्वयं गुलामी की जंजीरों से बंध जाते हैं और हमेशा शंकित वातावरण में जीते हैं। अपने चारों तरफ एक अनचाही असुरक्षा की दीवार हम स्वयं ही निर्मित कर लेते हैं जिसके अन्दर हम कभी भी शांति के साथ नहीं जी सकते हैं।

कमाली की इतनी छोटी उम्र और बला का ज्ञान, सर्वाजीत के लिए आश्चर्य से कम नहीं था। वह अपने हृदय के किसी न किसी कोने में उसकी विद्वता को स्वीकार करने लगा था लेकिन उसके अहंकार का सीना उसकी श्रेष्ठता को मानने के लिए तैयार नहीं था।

वह अपने मन की गहराइयों में फूल और कांटो की बिसात पर स्वयं को ढूंढने का लगातार प्रयत्न कर रहा था। कमाली उसके चेहरे पर आने-जाने वाले सभी भावों को पढ़ती जा रही थी। जैसे ही उसके शब्दों के बाण रूके, सर्वाजीत अपनी आत्मा के दर्पण पर उन्हें रखकर उनका शिक्षण-परीक्षण कर ही रहा था कि लड़की थोड़ी मुस्कुराई और मन्द-२ सुरीली आवाज में उसने फिर प्रश्न किया-

कमाली- महानुभाव! इतना तो बताइये कि आप कबीर साहब के साथ शास्त्रार्थ क्यों करना चाहते हैं?

आगन्तुक- मैंने कांशी के सभी विद्वान पंडितों को शास्त्रार्थ में हरा दिया है इसलिए मैंने अपना नाम सर्वाजीत रख लिया है लेकिन मेरी मां मुझे सर्वाजीत मानने के लिए तैयार नहीं है। वह कहती है कि मैं तुझे तब सर्वाजीत मानूंगी जब तू कबीर को हराएगा। आज मैं यह संकल्प लेकर आया हूं कि जब तक कबीर को नहीं हरा देता तब तक मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूंगा।

कमाली- आपकी जीतने की इतनी अधिक लालसा क्या आपको आशक्ति के बंधन में नहीं बांधती है? और आपने स्वयं ही अपना नाम सर्वाजीत रख लिया है यह तो एक हिंसा है। जिस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए दूसरों को दबाया जाए और अपना दबदबा

कायम रखने के लिए दूसरों के अन्दर भय पैदा किया जाए, यह तो हिंसा का मार्ग है, एक आतंक जनित प्रयत्न है। क्या एक हिंसक व्यक्ति धार्मिक हो सकता है? आपने अन्न-जल ग्रहण न करने का जो संकल्प लिया है क्या उससे अन्नमय ब्रह्म का अपमान नहीं है?

अब सर्वाजीत के लिए एक भी शब्द सुनना असम्भव हो गया था। उसकी चेतना लड़की के विश्वास और सत्यता के सामने डूबने लगी थी। उसके पैरों के नीचे की जमीन खिसकती जा रही थी। कमाली का एक-२ शब्द उसके अस्तित्व व सम्मान के लिए खतरा बनता जा रहा था। धीरे-२ उसके स्वयं निर्मित धर्म के ऊपर भी चोट पड़ने लगी थी। ऐसा धर्म जिसे शास्त्रों के प्रमाणों से उसने अपने और समाज के लिए निर्मित कर लिया था, अपने अहंकार की रक्षा के लिए उसे अपना कवच बनाकर धारण कर लिया था। इससे पहले कि लड़की उससे अगला प्रश्न करती, वह स्वयं ही अपने अहंकार की रक्षा के लिए शब्दों की रचना करने लगा-

आगन्तुक- तुम अबोध बालिका हो, मैं तुम्हारे साथ कोई बहस नहीं करना चाहता हूं। मुझे कपया कबीर से मिलवा दीजिए ताकि मैं अपने कार्य को अंजाम दे सकूं।

कमाली ने सर्वाजीत के सामने दोनों हाथ जोड़कर अभिवादन किया और सम्मान के साथ उसे घर में ले आई। थोड़ा समय इंजतार

करने के लिए कहा और अन्दर चली गई। कुछ समय बाद कबीर साहब आए और मेहमान का आदर सत्कार करने के बाद सर्वाजीत के आने का प्रयोजन पूछा। सर्वाजीत ने कबीर साहब को शास्त्रार्थ करने के लिए ललकारा ताकि वह सार्वभौमिक रूप से अजेय हो सके और अपने संकल्प को पूरा कर सके। कबीर साहब यह सुनकर प्रसन्न हुए कि वह अपनी मां को खुश करने के लिए यह सब कर रहा है लेकिन साथ ही असमर्थता भी जता दी कि वह तो एक अनपढ़ जुलाहा है उसे कोई ज्ञान नहीं हैं। इसलिए कबीर साहब सर्वाजीत से सहज ही बिना शास्त्रार्थ किए अपनी हार स्वीकार कर लेते हैं।

सर्वाजीत ने कबीर साहब से ऐसे व्यवहार की कतई कल्पना नहीं की थी। उन्होनें उनकी जितनी भी वाणियां सुनी थी वे अल्हड़ भाषा में जरूर थी लेकिन उनमें उत्तम ज्ञान की झलक थी। उनमें द्वैतवाद की तनिक भी झलक न थी। ऐसी वाणी कोई सुलझा हुआ व्यक्ति ही बोल सकता था जिसके अन्दर अत्यधिक विश्वास भरा हुआ हो और यदि आवश्यकता हो तो सबको फटकार भी लगाता हो, न किसी से दोस्ती रखता हो और न किसी से बैर।

कबीर खड़ा बाजार में सबकी मांगे खैर।

न काहू से दोस्ती न काहू से बैर।

सर्वाजीत अभी तक कबीर की लड़की के व्यवहार को भूल भी नहीं पाया था कि कबीर ने जैसे उससे भी बड़ा लेकिन सत्कार का तमाचा उसके मूंह पर जड़ दिया हो। वह हर कदम पर जड़वत होता जा रहा

था। बाहर से बेसक उसने अजेय होने का और महाज्ञानी का चोला धारण कर रखा था लेकिन अन्तर में वह लगातार बाजी हारता जा रहा था। उसके दिल पर से उसका अधिकार जैसे समाप्त होता जा रहा था लेकिन वह संभला और अपनी भावनाओं की कमजोरी पर विजय प्राप्त करने की कोशिश करने लगा। उसका अहंकारी मन कहने लगा कि सर्वाजीत बड़ी मुश्किल से विश्व विजेता बनने का गौरव मिल रहा है इसे चूक मत जाना। ये भावनाएं तो पल दो पल का खेल है, ये मनुष्य की कमजोरियां होती हैं। तेरा ज्ञान इतना उच्चकोटि का है कि कबीर तुझसे घबरा गया है। यही कारण था कि जितनी बार भी शास्त्रार्थ हुए उनमें विश्व स्तर के सभी ज्ञानी आए लेकिन कबीर की कभी भी हिम्मत तुम्हारा सामना करने की नहीं हुई। कबीर अनपढ़ और गवार है इसलिए समाज के एक तबके के अन्दर इसकी ख्याति फैल रही है। अब मौका है कि उस तबके पर भी तेरा अधिकार हो जाएगा। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही इसके शिष्य हैं, इसकी हार के पश्चात् ये दोनों ही समुदाय इससे विमुख हो जाएंगे और तूं उनका सिरमौर बन जाएगा।

सर्वाजीत ने तुरंत कबीर से कहा कि यदि तूं अपनी हार स्वीकार करता है तो कागज पर लिखकर मुझे दे कि तूं मुझसे हार गया है ताकि मैं अपनी मां को वह दिखा सकूं। कबीर साहब ने कहा कि हे सर्वाजीत! मैं तो एक अनपढ़ आदमी हूं। मुझे लिखना भी नहीं आता है इसलिए अपने हाथ से ही जो चाहे लिख ले, मैं उसपर अपना

अंगूठा लगा दूंगा। सर्वाजीत दिल से बहुत प्रसन्न हुआ क्योंकि उसे मूंह मांगा इनाम मिल गया था। उसने कागज पर लिखा-कबीर हारा सर्वाजीत जीता। कबीर ने उसके नीचे अपना अंगूठा लगा दिया।

सर्वाजीत खुशी से झूमता हुआ अपनी मां के पास पहुंचा और उसे वह कागज का टुकड़ा दिखाया और कहा कि देखो मां, कबीर ने अपनी हार स्वीकार कर ली है। इसके लिए मुझे कुछ भी संघर्ष नहीं करना पड़ा। आज तक इतनी आसान जीत मुझे कभी नहीं मिली थी। मां ने कहा कि बेटा इसे पढ़कर तो सुना। सर्वाजीत ने कागज पढ़ा जो उस पर लिखा था-कबीर जीता सर्वाजीत हारा। मां ने कहा कि बेटा इसमें तो लिखा है कबीर जीता और सर्वाजीत हारा। सर्वाजीत कहने लगा कि मां यह कबीर तो कोई जादूगर लगता है, ऊंचे दर्जे का कोई ठग है जिसने मेरी लिखी हुई पर्ची बदल दी है। अब मैं दोबारा उसके पास जाता हूं और देखता हूं कि इस बार वह मुझसे कैसे बच पाता है। वह दोबारा कबीर साहब के पास जाता है, फिर वही लाइन अपने हाथ से लिखता है कि कबीर हारा सर्वाजीत जीता और कबीर साहब के दस्तखत करवाकर ले आता है और अपनी मां को दिखाता है। मां के कहने पर पढ़ता है लेकिन फिर भी उस कागज पर वही लिखा होता है कि कबीर जीता सर्वाजीत हारा। सर्वाजीत के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। वह मां से कहता है कि मां! यह कबीर तो वास्तव में बहुत चालाक है। इसकी जादूगरी निकालने के लिए मुझे कुछ और करना पड़ेगा ताकि उसे सबक सिखाया जा सके।

मां कहती है कि बेटा! कबीर चालाक नहीं हैं, वह तो बहुत ही सरल हृदय और बालक के समान चित्त रखता है। उसके मन का दर्पण इतना निर्मल है कि जो भी उसके सामने जाता है उसके मन के सारे आवरण गिर जाते हैं और वह गंगा के नीर की तरह निर्मल हो जाता है। उसकी छवि निखर जाती है और वह दिव्य होकर लौटता है। अब मैं समझ गई हूं कि कबीर रूपी गंगा में स्नान करके तेरे मन का दर्पण भी निर्मल हो गया है और तूं जब भी कबीर साहब के सामने जाता है तो तेरे अन्दर से हरि प्रकट होता है जो तेरे मन के अहंकार को हर लेता है और तूं वही लिखता है जो तेरी आत्मा कहती है। तेरे दिल और आत्मा के ऊपर कबीर साहब का अधिकार हो चुका है। अब तूं स्वंय को हार गया है, यही तेरी वास्तविक जीत है अब मैं तुझे सर्वाजीत मानती हूं क्योंकि सर्वाजीत वही हो सकता है जो सच्चाई को खुले हृदय से स्वीकार करता है। तत्व को तत्व के रूप में स्वीकार करता है अर्थात् परम् तत्व के सारे मायावी आवरण गिर जाते हैं और आत्मा ही मनुष्य की रक्षक बन जाती है, यही धर्म की प्राप्ति है। सर्वाजीत सच्चाई को खुशी के साथ स्वीकार करता हुआ कहता है कि मां, मैं तो कबीर साहब की लड़की कमाली से ही हार चुका था लेकिन मेरा अहंकारी मन यह मानने की अनुमती नहीं दे रहा था। अब मैं वास्तविकता समझ चुका हूं और मैं हारकर भी जीत गया हूं।

बपचन के संस्कारों का मेरे सतगुरू राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज के जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। बचपन की घटनाओं ने आजीवन उनका मार्गदर्शन किया। बचपन की भूख, बचपन के दु:ख और जीवन की पीड़ाओं ने साधारण व्यक्ति के दु:ख व पीड़ाओं का दर्द समझने में सहायता की। जब उनका जन्म हुआ तो घर में खाने के लिए एक वक्त का भोजन भी मुश्किल से नसीब होता था। उनके जन्म के बाद उनकी मां को तीन दिन के बाद थोड़ा दलिया खाने को मिला, वह भी एक पड़ौस की औरत ने मदद की। यही कारण था कि जब भी कोई गरीब गर्भवती औरत उनके पास आती थी तो वे उसे आटा, दो किलो घी और चीनी देते थे। यह कार्य उन्होंने आजीवन किया। ऐसी औरत को देखकर उनको अपनी मां की याद आ जाती थी।

जन्म लेने के कुछ ही दिनों बाद मां का देहांत हो गया। दादी के आंचल का साया उनके भाग्य का सहारा बना। पिता कई-२ दिनों व महीनों में घर आते थे। वे हरफूल डाकू के साथ रहते थे। उनके किसी गुनाह के लिए मेरे सतगुरू को एक बार गांव दिनोद (भिवानी) से हिसार पुलिस थाने जाना पड़ा। आप कहते थे कि उस दिन मैंने पुलिस के डर से जो स्मरण परमात्मा का किया वह जीवन में कभी नहीं हुआ। किसी बुजुर्ग ने कहा था कि ऊंट की पूंछ पकड़कर परमात्मा के नाम का स्मरण करते हुए जाना। उन्होंने वैसा ही किया और जैसा विश्वास लेकर गए थे वैसी ही मदद परमात्मा ने भी की।

थाने में जाते ही दरोगा साहब ने गुस्से में कहा कि इस बच्चे को यहां क्यों लाए हो, तुम्हे शर्म नहीं आई। उनसे कहा कि जाओ फिर कभी यहां नहीं आना। यह घटना मेरे सतगुरू के जीवन की सम्भवतः पहली चमत्कारी घटना थी। उन्हें परमात्मा के नाम में एक जीवन ज्योति दिखाई दी थी जिससे मन में शक्ति का संचार हुआ।

पिता जी जब घर आते थे तो उन्हें अकसर पीटते थे और पूछते थे कि बता परमात्मा कितनी बार हंसता है? पुत्र के न बोलने पर फिर स्वयं ही बताते थे कि परमात्मा दो बार हंसता है। एक बार तो तब जब वह किसी को बरकत देने लगता है और दुनियां के लोग उसे छीनने लगते हैं तब वह हंसता है कि देखो, मैं उसे दे रहा हूं और ये मूर्ख व अज्ञानी लोग उसे कंगाल करने की कोशिश कर रहे हैं। जब तक मैं इसका सहायक हूं तब तक सारा संसार भी उसकी हानि नहीं कर सकता है। दूसरी बार वह तब हंसता है जब वह किसी से छीनने लग जाए और दुनियां उसे बचाने का प्रयत्न करे। कुदरत पिता के अन्दर से उन्हें जीवन का पाठ पढ़ा रही थी।

पिता अपने लिए अपयश बटोरकर भी जाने-अनजाने बेटे को ज्ञान की कड़वी घूंटी पिला रहे थे ताकि वह जीवन के रहस्य को समझ जाए। पुत्र भी उनके सुख का पूरा ध्यान रखते थे क्योंकि उन्होंने शास्त्रों की बात अपनी दादी से सुनी थी कि मां व पिता पथ्वी और आकाश के सारे देवी-देवताओं से बड़े होते हैं। यही कारण था कि मेरे सतगुरू ने राधास्वामी सत्संग का सबसे पहला

संदेश आजीवन यही दिया कि जो व्यक्ति अपने माता-पिता का नहीं हो सकता है वह सतगरू या परमात्मा का कैसे हो सकता है? यह सम्भव नहीं है। पिता के निष्ठुर व्यवहार के अतिरिक्त समाज के कुलीन समझे जाने वाले व ऊंचे घराने के लोगों तथा दूसरे सम्प्रदाय के अनुयाईयों के द्वारा उन्हें अनेकों बार घेरा गया और जाति से गिराने का डर दिखाया गया। कई बार तो मेरे सतगुरू को घर और गांव छोड़ने पर विवश होना पड़ा। उन्हें तरह-२ के लालच भी दिए गए, उनके खिलाफ उन्हीं के द्वारा इश्तहार लगवाए गए लेकिन उन्होंने कभी भी हार नहीं मानी और अपने संकल्प को लेकर आगे बढ़ते गए। ऐसे समय में सीता माता की शिक्षा ने हमेशा उनकी सहायता की। ऐसी कठिन परिस्थिति के समय वे सोचते थे कि जब सीता माता के कठिन दौर में उसका राम हमेशा उसके साथ रहा तो मेरा राम भी तो मेरे साथ है।

दादी उन्हें कहानियां सुनाकर ज्ञान की बातें बताती थी। जब भी कोई दुःख आता था, गरीबी की असहाय मार पड़ती तो वे कहती थी कि बेटा, जिसका कोई नहीं होता उसका परमात्मा होता है, वह एक दिन अवश्य आएगा और तेरी हर पीड़ा की दवाई देगा। तेरे हर घाव पर मरहम लगाएगा और तेरा जीवन धन्य हो जाएगा। आज तूं अपनी पीड़ा की चिंता करता है लेकिन एक दिन ऐसा भी आएगा जब तूं सारे संसार की पीड़ा हरेगा और चारों दिशाओं में प्रभु के प्यार का प्रकाश फैलाएगा।

वे उन्हें बताती थी कि किस तरह परमात्मा ने ध्रुव की मदद की, प्रहलाद और द्रोपदी की मदद की। वह तेरी मदद भी अवश्य करेगा। वे कहती थी कि मेहनत का फल हमेशा मीठा होता है। परमात्मा ने जिसको जन्म दिया है उसे वह रोटी भी अवश्य देता है लेकिन जो मेहनत नहीं करते हैं या छल करते हैं उन्हें मैली रोटी मिलती है और जो मेहनत करके रोटी कमाते हैं उन्हें परमात्मा की दात मिलती है जिससे जीवन में सुख व शांति मिलती है। इसकी पुष्टि करते हुए वे उन्हें एक कहानी सुनाती थी जो इस प्रकार है-

एक व्यक्ति एक साधु के पास गया और कहने लगा कि महाराज! मैं कोई मेहनत नहीं कर सकता हूं इसलिए कोई ऐसा उपाय बताइये जिससे मेरा जीवन शांति से कट जाए और रोजी-रोटी भी मिलती रहे। साधु ने कहा कि रोटी तो परमात्मा अवश्य देगा लेकिन इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि शांति भी मिलेगी। व्यक्ति ने कहा कि महाराज मुझे मंजूर है, बस रोटी का प्रबंध की दीजिए। साधु ने कहा कि आप कहीं भी जाकर बैठ जाइये, वहीं पर परमात्मा आप के भोजन का प्रबंध कर देगा। व्यक्ति को विश्वास नहीं हुआ और वह साधु की परीक्षा लेने के लिए एक नदी के किनारे जाकर बैठ गया। जब दोपहर हुई तो खाना नहीं मिला, फिर शाम हुई तो व्यक्ति को भूख सताने लगी और मन ही मन साधु बाबा को कोसने लगा। जब भूख से व्याकुल हो गया और भागने के लिए तैयार हुआ तो तभी नदी के पानी के ऊपर कुछ तैरता हुआ उसकी तरफ आता हुआ दिखाई

दिया। वह ठहरा और देखा तो उसे एक लकड़ी के ऊपर रोटियां नजर आई। उसने तुरंत वे उठाई और खा गया। अब उसे साधु की बात पर कुछ विश्वास हुआ और वहीं ठहर गया। अगले कई दिनों तक तीनों समय उसी प्रकार नदी के पानी में रोटी आती रही और वह उन्हें खाता रहा लेकिन एक दिन रोटियां आने में देरी हो गई तो उस व्यक्ति से रहा न गया और वह उसी तरफ यह देखने के लिए चल पड़ा कि देखूं ये रोटियां कहां से आती हैं। कुछ दूर जाकर उसने देखा कि एक औरत एक आदमी के साथ बैठी है और कुछ कर रही है। उसने औरत से पूछा कि माता, यह क्या कर रही हो। उस औरत ने बताया कि बेटा, ये मेरे पति हैं, इन्हें कोढ़ की बीमारी हो गई है। एक साधू वैद्य ने बताया है कि मैं इसके शरीर पर सूखा आटा लगाऊ और एक घंटे के बाद जब आटा कोढ़ के मवाद को सोख ले तब उस आटे को मसल-२ कर उतारू और उसकी रोटी बनाकर इस पानी में बहा दूं, तब इसका कोढ़ ठीक होगा। आज यह आटा मवाद से ठीक तरह गीला नहीं हुआ इसलिए मुझे रोटी बनाने में देर हो रही है।

व्यक्ति ने ज्यों ही औरत की वह बात सुनी उसका मन गलानी से भर गया और वहीं पर वमन करने लगा। दुःखी और पश्चाताप की अग्नि में जलता हुआ साधू के चरणों में जा गिरा और उनसे उनकी परीक्षा लेने के लिए माफी मांगी तथा आगे से मेहनत करने का प्रण लिया।

इस कहानी को दादी से सुना तो मेरे सतगुरू ने उसी दिन संकल्प लिया कि हमेशा मेहनत के द्वारा कमाई हुई रोटी ही खाऊंगा।

इसलिए वे जब भी घर से बाहर दूसरे गांव में जाते या कहीं किसी संबंधी के घर जाते तो कहते थे कि पहले मुझे कोई काम बताओ, उसके बाद ही भोजन खाऊंगा। यही कारण था कि उन्होंने सारा जीवन कर्मयोग को तपाया और अपने हाथों की कमाई से कमाया हुआ पवित्र अन्न ग्रहण किया।

दादी कहती थी कि बेटा, परमात्मा जो भी करता है ठीक करता है, कभी भी परमात्मा से यह शिकायत नहीं करना कि उसने कुछ गल्त किया है। परमात्मा कभी भी कुछ गल्त नहीं करता है। हम उसके कार्य को समझने में भूल कर जाते हैं क्योंकि कोई भी मां अपने पुत्र का नुकसान नहीं कर सकती है। हां इतना अवश्य है कि जब शरीर में मवाद का फौड़ा हो जाता है तो वह मां उस मवाद को निकालने के लिए डाक्टर के हाथ में छुरी दे देती है और अपने पुत्र को चारों ओर से चीरा लगवाने के लिए दबा लेती हैं यह उसी प्रकार है जैसे एक कुम्हार अपने घड़े को सही आकार देने के लिए उसके नीचे हाथ का सहारा देता है और ऊपर से चोट मारता है। इसी प्रकार सतगुरू अपने शिष्य के साथ करता है और उसके तन व मन की चेतना पर चोट मार-मार कर उसके सारे खोट बाहर निकाल देता है। सतगुरू व्यक्ति के स्वभाव और क्षमता को देखकर कार्य देता है इसलिए वह सबके साथ अलग-२ तरह का व्यवहार करता हुआ प्रतीत होता है। कोई व्यक्ति ज्ञान का भूखा होता है, कोई प्यार का तो कोई रूखे व्यवहार को ही पसन्द करता है। इसलिए सतगुरू व्यक्ति

के स्तर के व्यवहार में उतरकर उसके दिल में घर करता है और उसके सुधार का प्रबंध करता है। इसीलिए राधास्वामी पंथ की मुख्य शिक्षा यही है कि सतगुरू अर्थात् परमात्मा की मौज में हमेशा खुश रहना चाहिए। वह कभी भी किसी का बुरा नहीं करता है। जब हम उसकी मौज को समझ नहीं पाते हैं तभी हम उससे शिकायत करते हैं।

मेरे सतगुरू के ऊपर दादी की इन कहानियों और शिक्षाओं का बहुत गहरा असर पड़ा और हमेशा दीन-हीन, गरीब और असहाय लोगों की सहायता करते रहे। इतना ही नहीं, पशु पौधे व पक्षियों की पीड़ा भी उनके लिए असहनीय थी। इसलिए उन्होंने हमेशा प्रेम को मनुष्य की सबसे बड़ी दौलत बताया और कहा कि जहां प्रेम और करूणा नहीं हैं वहां परमात्मा का अवतरण नहीं हो सकता है। जबसे उन्होंने होश सम्भाला तभी से वे वर्षा ऋतु से पहले गर्मी से तपते दो महीनों में गांव के चारों ओर दो कोस तक पक्षियों के लिए पेड़ों पर पानी भरते थे क्योंकि राजस्थान से लगते भिवानी के रेगिस्तान में पानी की कमी से गर्मी के उन महीनों में पशु व पक्षियों का जीवन कठिन हो जाता था। उनकी सभी जीवों के प्रति इतनी संवेदनशीलता और समाज व परिवार की निष्ठुरता तथा परिवार की दयनीय हालत उन्हें परमात्मा के और अधिक निकट ले गई और उन्होंने अपने इसी जीवन में परमात्मा की अनुभूति का आनन्द महसूस किया। मेरे सतगुरू का जीवन हमें यह शिक्षा देता है कि व्यक्ति कितना भी गरीब हो, कितना भी दुःखी व अपनढ़ हो, यदि उसमें आत्म-स्वाभिमान है, कुछ बनने

की और दूसरों की सहायता करने की तमन्ना है तो वह घर में रहते हुए और इसी जीवन में ऊंची से ऊंची उपलब्धि हासिल कर सकता है तथा दूसरे लोगों के लिए एक मिशाल बन सकता है।

किसी भी व्यक्ति का बचपन इतना नाजुक व महत्वपूर्ण समय होता है कि वह उसके प्रभाव से किसी भी आकार में ढ़ल सकता है। इसलिए व्यक्ति के बचपन की शिक्षाएं एवं वातावरण उसके, समाज के तथा देश के भविष्य का निर्माण करते हैं लेकिन जब तक माता-पिता और देश व समाज के जिम्मेदार व्यक्तियों का आचरण, व्यवहार और विचार पवित्र नहीं होंगे तब तक पारिवारिक व सामाजिक वातावरण में सुधार आना सम्भव नहीं है क्योंकि बच्चा अपने घर में और चारों तरफ जो भी देखता है वह वैसा ही करने और बनने का प्रयत्न करता है इसलिए हम सबका यह कर्त्तव्य है कि हम अपनी आने वाली प्रणाली के उत्तम भविष्य के लिए ऐसा जीवन जीने की कोशिश करें जिससे हमारी संतानों को हमारे होने का गर्व महसूस हो और उनकी गर्दन कभी भी लज्जा से न झुके।

राधास्वामी।

जिज्ञासुओं के लिए प्रश्न

- क्या धर्म रोजी-रोटी दे सकता है?
- क्या अध्यात्म से दु:खों का छुटकारा हो सकता है?
- क्या अध्यात्म धन और आश्रमों का मोहताज हो गया है?
- क्या सत्संग केवल धन कमाने का साधन बन गया है?
- क्या धर्म देश और समाज को सुरक्षा दे सकता है?
- क्या धर्म बिखरे व्यक्तित्व और समाज को जोड़ सकता है?
- क्या परमात्मा अमीर लोगों की धरोहर बन गया है?
- अध्यात्म क्या है? आत्मा का स्वरूप क्या है?
- क्या अध्यात्म, विज्ञान और संसार एक दूसरे के विरोधी हैं?
- क्या शरीर, मन व आत्मा अलग-अलग हैं?
- कुण्डलीनी जागरण क्या है?
- अनहद शब्द व धुन में क्या अन्तर है?
- परम्परावादी और आत्मनिष्ठ धर्म में क्या अन्तर है?
- कर्मकाण्ड बन्धन व दु:ख का कारण क्यों बन जाता है?
- सभी धर्मों की उत्पत्ति मानसिक संसार से है, कैसे?
- अच्छी संगत से बुरे कर्म कैसे कट जाते हैं?
- सतगुरू सूली का दर्द सूल में कैसे बदल देता है?
- सिद्ध पुरूष की इच्छा शक्ति मजबूत क्यों हो जाती है?
- सृष्टि की प्रलय व शरीर की मृत्यु का क्या सम्बन्ध है?
- अभ्यास की अट्ठारह मंजिलें कौन सी हैं?
- क्या भाग्य को बदला जा सकता है?
- क्या मन व अंहकार वास्तव में बुरे हैं?
- अध्यात्म के लिए विशाल दृष्टि जरूरी क्यों?
- सुरत-शब्द योग का मार्मिक रहस्य क्या है?
- व्यक्तिगत अस्तित्व व ब्रह्माण्ड में कितनी समानता है?
- ध्यान से समस्याओं का समाधान कैसे मिलता है?
- ध्यान से संसार का विनाश भी हो सकता है, कैसे?
- प्रेतात्मा व देवात्मा के प्रकट होने का कारण व अर्थ
- उत्पत्ति व प्रलय का वैज्ञानिक व अध्यात्मिक आधार क्या है?
- नाम व ध्यान का विज्ञान क्या है?
- कामधेनू गाय व कल्ववृक्ष की प्राप्ति क्या है?
- असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति कैसे हो?

.....इत्यादि प्रश्नों के उत्तर जानिऐ?

राधास्वामी सत्संग ताराधाम, कुरूक्षेत्र

पुस्तक सूची

1. सतगुरू ताराचन्द जी महाराज के 101 अनमोल रत्न
2. रूहानी पत्र व सतगुरू आदेश
3. आत्मिक सफर और रूहानी मंजिलें (प्रश्नोतरी)
4. संत अवतरण
5. सम्यक समाधि : आत्मिक सफर की कहानी
6. पुरूष-प्रकृति
7. ईसा-मसीह कौन हैं?
8. युद्ध और जीवन दर्शन
9. अवतार अवतरण रहस्य
10. अध्यात्म से इच्छा शक्ति मजबूत कैसे होती है?
11. प्रेम और भक्ति का शिखर
12. सत्य और धर्म का अनुभव क्या इसी जन्म में संभव है?
13. टूटते रिश्ते बढ़ता अंधविश्वास व अध्यात्म
14. बच्चों पर सत्संग का प्रभाव
15. विश्व की समस्याएं और आध्यात्मिक समाधान
16. पृथ्वी पर ईश्वर का साम्राज्य
17. क्या धर्म, विज्ञान और संसार अलग-अलग हैं?
18. मनुष्य के लिए अध्यात्म जरूरी क्यों ?
19. आध्यात्मिक संकल्प, मार्ग एवं लक्ष्य